International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493; Impact Factor: RJIF 5.46
Received: 24-10-2020; Accepted: 11-11-2020; Published: 27-11-2020
Volume 2; Issue 4; 2020; Page No. 51-53

एक ब्रेक के बाद उपन्यास में बदलते वैश्वीकृत बाजारीकरण का अध्ययन

सगीर अहमद[1], डॉ. अजय कुमार[2]
[1] हिंदी विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली, भारत
[2] नावरिया हिंदी, विभाग जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली, भारत

सारांश
कुल मिलाकर देखा जाए तो लेखिका ने अपने उपन्यास में वैश्वीकरण प्रदत लगभग सभी पहलुओं पर चिंता जाहिर की है। विकास के नाम पर विस्थापन का दंश बार-बार उपन्यास में आता है। बाजारीकरण के मानदंडों को बदलने वाले विज्ञापन की संस्कृति पर भी लेखिका की चिंता जाहिर होती है कि किस प्रकार विज्ञापन ने हमें अपने नियंत्रण में ले लिया है। अब विज्ञापन ही तय कर रहा है कि हमें क्या लेना है, क्या नहीं बड़ी-बड़ी मल्टीस्टोरल कंपनियां किस प्रकार बड़े-बड़े फिल्मी स्टारों को विज्ञापन का केंद्र बनाकर एक-एक दिन में करोड़ों करोड़ों कमा रही हैं तथा अमीर गरीब के खाई किस प्रकार बढ़ती जा रही है चिंता व्यक्त की है। विदेशी कारपोरेट कंपनियां विकास के नाम पर सरकारों से मिलकर उनके ही देश के लोगों को कैसे पिटवा रही हैं बरबस चित्रण हमें देखने को मिलता है। संपूर्ण उपन्यास में लेखिका का दूरदर्शी अर्थशास्त्रीय व समाजशास्त्रीय अध्ययन दिखता है।

मुख्य शब्दः वैश्वीकृत बाजारीकरण, विज्ञापनी संस्कृति, संवेदनात्मक धरातल,विस्थापन, कारपोरेट जगत, उपभोक्ता वादी संस्कृति, मल्टी स्टारर कंपनियां

प्रस्तावना

अलका सरावगी अपने उपन्यास 'एक ब्रेक के बाद' में वर्तमान दौर में बदलते वैश्वीकृत बाजारीकरण का विमर्शात्मक चित्रण किया है। उनके औपन्यासिक विमर्श में पनपते मॉल कल्चरए विज्ञापनी संस्कृति से लेकर पर्यावरण संरक्षणए भूमि अधिग्रहण तक की एक व्यापक चिंता दिखाई देती है। लेखिका ने मध्यवर्गीय समाज को केंद्र में रखकर वर्तमान बाजारीकरण के तिकड़मों को बहुत गहराई से चित्रण किया है। डॉण् पुष्पपाल सिंह के शब्दों में.श्एक ब्रेक के बाद उपन्यास में अलका कथा केंद्र में मुख्यतः कारपोरेट जगतए व्यवसाय जगत को रखकर भूमंडलीय व्यापार जगत आर्थिकता के स्वेत.श्याम पक्षोंए कम्प्यूटर क्रांति के नफे नुकसानए इंडिया की इकोनॉमी कल्चरए पॉलिटकल हिस्ट्रीए मल्टीनेशनल कंपनियों के दिग्गज प्रबंधन अधिकारियोंए विकास की द्रुत गतिए समकालीन कला बाजार (आर्ट मार्केट) पर्यावरण प्रश्नए माल्स और डिपार्टमेंटल स्टोर्स के एक दिन में पांच करोड़ रुपये टर्न.ओवर इंडिया स्काई शॉप आदि के वैश्वीकृत दृष्टिकोण नई पीढ़ी और उसकी यौनिकताए स्वतन्त्रता आदि प्रश्नों समस्याओं पर पूरे अधिकार से विश्वस्त विमर्श रचती हैं।'[1]

वैश्वीकरण ने हमारी जीवन पद्धति और सोच को जिस रूप में बदलकर रख दिया है तथा जीवन मूल्योंए संबंधों मान्यताओं आदि में जो निर्ममता और ध्वंश की स्थिति आई है उसे उपन्यास ने बड़ी गहराई से उकेरा है। अलका सरावगी अपने उपन्यास में लिखती हैं.श्जमाना हर समय बदलता हैए पर पिछले दस सालों में जमाना एक बार छलांग लगाकर जैसे सौ साल आगे निकल गया है।'[2]

वैश्वीकृत बाजारीकरण के डैने हमें किस प्रकार अर्धसत्य छिपाकर अपने परिधि में समाहित कर रहे हैं पूरे उपन्यास में लेखिका के अर्थशास्त्रीय व समाजशास्त्रीय अध्ययन की सूक्ष्मता देखी जा सकती है। विकास के नाम पर हमारे पीछे विस्थापन की जो गहरी खाई बनाई जा रही है उसका भी चित्रण बार-बार देखने को मिलता है लेखिका प्रश्नचिन्ह स्वरूप विकास के मुद्दे पर व्यापक बहस करती है। गुरुचरणए केण्वीण शंकर अय्यर से प्रश्न करता हुआ पूछता है.श्अच्छा बताइए क्या आप सचमुच सोचते हैं कि हमारे देश की तरक्की का मतलब यह होगा कि गरीबी की रेखा के नीचे 26% लोगों का पेट भरने लायक हम हो जाएंगे? 26% यानी कि 30 करोड़ लोग इतने सारे लोगों की जिंदगी कैसे बनेगी जो सड़क के कुत्तों जैसी ही जिंदगी जी रहे हैं?'[3] इतना ही नहीं इस ग्लोबल बनती जा रही दुनिया को देखकर लेखिका संवेदनात्मक धरातल पर भी उतर कर प्रश्न करती है.श्सोचो कि एक औरत और आदमी अपनी जमीन इसलिए सरकार को या कंपनी को देने से इंकार करें कि उनके दो साल के मरे हुए बच्चे की देह पिछवाड़े के खेत में गड़ी है और वहां पर लगाया हुआ आम का पेड़ अब दो साल बड़ा हो गया हैए तो इसमें गलत क्या है।'[4] वास्तव में विकास के पीछे छिपी यह सच्चाई मन में कई प्रश्न खड़ा करती है कि क्या किसान सिर्फ अपनी जमीन इसलिए कौड़ी के भाव बेच दें कि इसके नीचे कोयले और अल्मुनियम के भंडार हैं या वह भी न सोचे कि इसी जमीन पर उसके बाप दादों ने खेती की और पले बढ़े।

आज विकास के नाम पर बड़ी-बड़ी कंपनियां और सरकारें मिलकर किसानों आदिवासियों को विस्थापित कर रही हैं लेखिका उनसे बार-बार टकराती है तथा यह दिखाती है कि विस्थापित हुए लोगों के प्रति सरकार क्या करती है उपन्यास में यह चित्रण बार.बार देखा जा सकता है।दृ श्जहां वह (गुरुचरण) रह रहा थाए किसी बड़ी कंपनी ने कुछ दूर के एक गांव में पुलिस की मदद से रातों-रात सोते हुए गांव वालों को स्त्री.पुरुषए बूढ़े.बच्चे सब को भेड़ बकरियों की तरह उठा कर जेल भेज दिया था। उनके चूल्हे.चक्कीए खेत.बाग पशु.प्राणी सब को रौंदकर मिट्टी में मिला दिया छह सौ से ज्यादा घर उजाड़ दिए गए और उनमें से सौ एक को जमीन पैसा देकर छुट्टी पा ली बाकी सब दिहाड़ी मजदूर बनकर या भिखारी बन कर हमारे शहरों की क्रॉसिंग पर भीख मांगते रहे या मर खप गए।'[5] वास्तव में विकास के नाम पर इस तरह का विस्थापन हमारे देश में बहुत ही भयावह है किंतु उद्योगपतियों एवं सरकारों का मिलाजुला तर्क भी देखने योग्य हैदृश्देखोए इस देश की रिस्ट्रक्चरिंग या पुनर्गठन करना हैए तो कुछ लोग हारेंगे कुछ लोग जीतेंगेश्ए तुम यह जान लो गुरचरण कि गरीबों का सवाल उठाने वाले दरअसल आर्थिक सुधार के मुद्दे को भटकाना चाहते हैं।'[6] आज वैश्वीकृत दुनिया का शासन बड़े बड़े कारपोरेट चला रहे हैं सरकारें और पार्टियां मात्र एक बिचौलिया बनकर रह गई हैं कहीं भी विकास.विस्थापन की बात हो बड़े बड़े कारपोरेट मुख्य भूमिका में रहते हैं.श्गुड़गांव में होंडा गाड़ी की फैक्ट्री में तुमने देखा क्या हुआ था?

पुलिस लाठी चार्ज करके मजदूरों की कमर तोड़नी पड़ी इस तरह अगर मजदूर यूनियन बाजी करेंगेए तो विदेशी पूंजी आने से रही भाग जाएगी सारी कंपनियां इंडिया से।'[7] किंतु कारपोरेट की रोटी खा रहा उच्च वर्ग इन चीजों से कोई वास्ता नहीं रखताए चाहे विदेशी कंपनियों के हाथों देश बिक जाए इन्हें बस मुनाफा मिलता रहे कोई विस्थापित हो रहा हो हो जाए कोई फर्क नहीं पड़ता केण्वीण् शंकर अय्यरए नारायण मूर्तिए चोरड़ियाए रंगनाथए भट्टएउपन्यास में ऐसे ही पात्र हैं जिनकी संवेदनात्मकता खत्म हो चुकी है केण् वीण् गुरु से कहता है.श्पुलिस को मजदूरों पर इस तरह अत्याचार करते देख तकलीफ होती हैए पर देश की भलाई में 'कोलटेरल डैमेज' यानी छोटे-मोटे अनुषांगिक नुकसान तो उठाने ही होंगे।'[8] गुरुचरण की डायरी पिछले 3 साल का ब्यौरा जब यह बताती है कि कहां कितने फ्लाईओवरए शॉपिंग मॉल बने तो पाठक सोचने के लिए मजबूर हो जाता है। यह वैश्वीकृत दुनिया कितनी तेजी से आगे भाग रही है। जब नौकरी पेशा व्यक्ति 60 की उम्र आते-आते रिटायर होकर आराम की जिंदगी अपने किसी लुभावने शहर में व्यतीत करने की सोचता है तब भी केण् वीण् शंकर के पास टाइम नहीं रहता। वह 60 के बाद भी उसी रूप में आगे बढ़ रहा है जैसे कोई युवा.'पूरे शहर के किसी दफ्तर में ऊपर से नीचे तक एक भी ऐसा शख्स नहीं होगा जो उनकी तकदीर से रश्क ना करता हो जिस उम्र में लोग रिटायर होकर कोई नया ठौर या नया तरीका खोजते में बुझते चले जाते हैंए उम्र के उसी मुकाम पर केण् वीण् शहर में सबसे ज्यादा पैसा पाने वाला 'मार्केटिंग कंसलटेंट' है। उनके आस.पास नौकरियां चक्कर लगाती हैं बजाय इसके कि वे नौकरी के लिए किसी के चक्कर काटें पहली नौकरी से लेकर आज तक ता उम्र ऐसा नहीं हुआ कि नौकरी और दूसरी नौकरी पकड़ने के बीच केण् वीण् एक दिन भी बेरोजगार रहे हों।'[9] आज बाजार की विस्तारवादी नीतियां तथा पैसे की अकूत चाहत वाले लोगों को किस तरह यंत्रीकृत कर रही है देखा जा सकता है।

आज वैश्वीकृत बाजारीकरण की प्रक्रिया ने प्रत्येक व्यक्ति को प्रोफेशनल स्मार्ट तथा वर्चुअल बना दिया है। आज प्रत्येक व्यक्ति इस वैश्वीकृत खुली अर्थव्यवस्था में अपने कार्य क्षमता के अनुसार काम ढूंढ सकता है। वर्तमान समय की मांग के अनुरूप वर्चुअल दुनिया ने इसे और भी आसान बना दिया है। केण्वीण् के शब्दों में.श्किसे फुरसत है कि आदमियों को रखने के लिए कोई शहर.शहर भटकेए कभी मुंबई दौड़े तो कभी बेंगलुरु जाए३ कंप्यूटर पर वीडियो कान्फ्रेंस से सबको देखोए सवाल जवाब करोए रखना है तो वही कंफर्म करो। नहीं तो मामला चलता करो।३ अब यह दुनिया असली रही कहां कंप्यूटर की वर्चुअल रियलिटी ही जिंदगी की सच्चाई है।'[10]

प्रस्तुत उपन्यास में अलका सरावगी ने वैश्वीकरण के दौर में अपनी अहम भूमिका निभा रहे विज्ञापनी संस्कृति का भी अर्थशास्त्रीयए समाजशास्त्रीय व व्यावसायिक अध्ययन का भी चित्रण किया है। आज विज्ञापन की संस्कृति हमें किस तरह से अपने शिकंजे में कस लिया है उसका चित्रण उपन्यास में देखा जा सकता है.श्अब गए वे दिन जब इंडिया में सरकारी अफसर तय करते थे कि औरतें बाजार से कौन सी क्रीम और लिपस्टिक खरीदेंगी और लोग किस टीवी पर कौन से प्रोग्राम देखेंगे अब तो देश के 10 करोड़ मोबाइल फोन वाले परेशान है कि 50 मॉडल से कौन सा मोबाइल खरीदें।'[11] वैश्वीकृत बाजारीकरण की दुनिया ने सभी वर्गों में जिस प्रकार छोटे बड़े सपनों को ईजाद किया है और जो ललक पैदा की है विज्ञापन की उसमें महती भूमिका है.श्जमाना 'ये दिल मांगे मोर' का है। बस्तर के गांव में अपनी झोपड़ी में बैठकर आदिवासी टीवी पर वाशिंग मशीन में कपड़े धुलते देख रहा है और डबल डोर फ्रिज में जाने कब से रखी ताजी लौकी और टमाटर की गाथा सुन रहा है। इस देश की एक अरब जनता अब एक साथ सपने देख रही है फर्क यही है कि किसी के सपने छोटे तो किसी के ज्यादा बड़े सपने।'[12]

वैश्वीकृत विज्ञापन की दुनिया ने हमारे बीच उपभोक्तावादी संस्कृति को काफी बढ़ावा दिया है। विज्ञापन ने ही 'नेबर एनिमी' का विकृत रूप जागृत कर एक भीड़ के रूप में हमें जहां चाहे तहाँ हांक रहा है बड़ी.बड़ी मल्टीस्टारर कंपनियां अपने उत्पाद बेचने के लिए कई.कई तरह की हथकंडे अपना रही हैं। छोटे से छोटे व रद्दी चीजों का विज्ञापन बड़े.बड़े फिल्मी स्टारों से करवा कर हमारे आंख में धूल झोंक रही है। लेखिका ने विज्ञापन संस्कृति की इस पनपती विकृति का व्यापक व विहंगम चित्र अपने उपन्यास में चित्रित किया है। वह लिखती हैं कि किस प्रकार मद्रास का 'एम्बर डिपार्टमेंटल स्टोर' दक्षिण भारत के चहेते स्टार रविकांत को विज्ञापन का आइकन बनाकर लोगों की जेबों से 1 दिन में 5 करोड़ कैसे खींच लिया.श्अपने जन्मदिन पर वह (रविकांत) स्टोर में मास्क लगाए वही शानदार सूट पहने मौजूद रहेगाए जिसका विज्ञापन पूरे शहर भर में लगा हुआ था और हर अखबार में पूरे पृष्ठ पर फैला हुआ था। रविकांत ने अपनी चाहने वाली जनता के लिए यह डिस्काउंट सेल रखा थाए क्योंकि उसके जन्मदिन पर ढेर सारी कंपनियों ने बिल्कुल लागत दामों पर.जो कि कई बार चालू दामों से 70% से भी कम थे अपनी चीजें एम्बर डिपार्टमेंटल स्टोर को दे दी थी३ रविकांत के जन्मदिन पर सुबह सात बजे से लोग 'एम्बर डिपार्टमेंटल स्टोर' के बाहर बीवी बच्चों सहित लाइन लगाकर खड़े हो गए थेए जैसे तिरुपति बालाजी के दर्शन के लिए खड़े हो दस बजे स्टोर खुलने तक दस हजार लोगों की भीड़ को काबू लाने के लिए शहर की पुलिस के जत्थे के जत्थे आ गए।'[13] लेखिका ने विज्ञापन के पीछे इस दौड़ती अंधी भीड़ को बहुत गहराई से रेखांकित किया है।

वर्तमान समय में वैश्वीकरण ने बाजार के स्वरूप को बदल दिया है उसने ना केवल विज्ञापनों के माध्यम से बाजारों में अधिक से अधिक बिकने वाले उत्पादों हेतु पाट दिया हैए बल्कि उसने एक ऐसे वर्ग का उदय किया है जो विज्ञापनों के चकाचौंध के पीछे भागने में विश्वास कर रही है। आज विज्ञापन की प्रभावशीलता ने कई ई.मार्केटिंग कंपनियों को खड़ा कर दिया है तथा बाजार के स्वरूप को पूरी तरह बदल दिया है। एक समय था जब बाजर मेलोंए हाटों व चौराहों पर हुआ करते थे। आज यह आकाशी दुनियां के माध्यम से हमारे घरों में पहुंच गया है। बस मोबाइल फोन उठाकर थोड़ी सी हरकत करने की जरूरत है आवश्यक वस्तुएं हमारे घर पर पहुंच जाएगी.'अमेरिकन स्काई शॉप' की भांति जब केण् वीण् 'इंडियन स्काई शॉप' के माध्यम से ई.मार्केटिंग की सोचता है तो बहुत से लोग आश्चर्यचकित हो जाते हैं कि भारत जैसे देश में जहां लोग आलू.प्याज से लेकर कोई भी सब्जी तक घुमा फिरा कर चारों तरफ देखकर लेते हैं तो वह बिना देखे (मात्र फोटो देखकर) कैसे ले लेंगे.श्सब को शक था सिवाय केण् वीण् के। जो काम कोई नहीं कर सकता या जिसे सब सोचते हैं कि करना असंभव हैए वही केण् वीण् को पता रहता है कि उसी में वह सौ प्रतिशत सफल होंगे।'[14] हालांकि केण् वीण्के सामने भी यह चुनौती कम नहीं थी कि कौन सा सामान इंडियन स्काई शॉप पर बेचा जाए कौन सा नहीं। इस पर उसने अपनी केस स्टडी घर से अपनी पत्नी से शुरू की.श्केण् वीण् ने सबसे पहले अपनी पत्नी के बारे में सोचा वे जानते थे कि पत्नी का सोच एकदम आम सोच है।'[15] उन्होंने यह अध्ययन करके जान लिया कि किन चीजों पर अधिक लुभाया जा सकता है तथा ऐसी कौन सी चीज है जो कामों को आसान कर दे.श्केण्वीण् को जब रंगनाथ से खर्राटे बंद करने वाली मशीन का पता चला वह अपनी कुर्सी से उछल पड़े३ पोस्ट ग्लोबल दुनिया में जवान दिखनाए सुंदर दिखना और वजन घटाना अरबों.डालरों का कारोबार है। लेकिन कम से कम इंडिया में ज्यादातर लोग यह नहीं चाहेंगे कि किसी को पता चले कि वह इस तरह के कामों के लिए पैसे खर्च कर रहे हैं। घर बैठे मालिश करने वाला तकिया आ जाएए सेंक करने वाली बिजली की थैली आ जाएए बाल उगाने वाला लोशन आ जाएए गोरा करने की क्रीम आ जाए तो और क्या चाहिए? ऊपर से कम दामों की गारंटी टीवी दे रहा है३आखिर सारे देश के लाखों लोगों के सामने टीवी झूठ तो नहीं बोलेगा।'[16] इस तरह केण् वीण् ने लगभग डेढ़ सौ कंपनियों के बनाए हुए तरह-तरह के सामान ऑनलाइन मार्केट से

बेची और तरह-तरह के सामान उन्होंने आकाशी दुनिया के माध्यम से भेजें जो बिना छुए और टीवी पर देखे बिना। यह केण्वीण की सफलता का अपूर्व क्षण था।

लेखिका ने अपने उपन्यास में वैश्विक स्तर पर तमाम बिंदुओं पर विमर्श भी किया है और संसाधनों के गलत इस्तेमाल पर चिंता भी जाहिर की है। उपन्यास में चित्रित पर्यावरण की चिंता तथा उसके पीछे छिपे असलियत को भी सामने लाती है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हुए पर्यावरण समझौते को भी लेखिका ध्यान में रखकर नीति नियंताओं पर प्रहार करती है। केण वीण की नई कंपनी 'कार्बो वेज सिस्टम इंक' के माध्यम से लेखिका पर्यावरणीय चिंताओं को सामने लाई है।

कुल मिलाकर देखा जाए तो लेखिका ने अपने उपन्यास में वैश्वीकरण प्रदत लगभग सभी पहलुओं पर चिंता जाहिर की है। विकास के नाम पर विस्थापन का दंश बार-बार उपन्यास में आता है। बाजारीकरण के मानदंडों को बदलने वाले विज्ञापन की संस्कृति पर भी लेखिका की चिंता जाहिर होती है कि किस प्रकार विज्ञापन ने हमें अपने नियंत्रण में ले लिया है। अब विज्ञापन ही तय कर रहा है कि हमें क्या लेना हैए क्या नहीं बड़ी-बड़ी मल्टीस्टोरल कंपनियां किस प्रकार बड़े-बड़े फिल्मी स्टारों को विज्ञापन का केंद्र बनाकर एक-एक दिन में करोड़ों करोड़ों कमा रही हैं तथा अमीर गरीब के खाई किस प्रकार बढ़ती जा रही है चिंता व्यक्त की है। विदेशी कारपोरेट कंपनियां विकास के नाम पर सरकारों से मिलकर उनके ही देश के लोगों को कैसे पिटवा रही हैं बरबस चित्रण हमें देखने को मिलता है। संपूर्ण उपन्यास में लेखिका का दूरदर्शी अर्थशास्त्रीय व समाजशास्त्रीय अध्ययन दिखता है।

संदर्भ

1. पुष्पपाल सिंह, भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण 2012. पृ. 102
2. अलका सरावगी, एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन दिल्ली पहला संस्करण 2010, पृ. 73
3. 'वही' पृ. 51
4. 'वही' पृ. 169
5. 'वही' पृ. 170
6. 'वही' पृ. 51
7. 'वही' पृ. 116
8. 'वही' पृ. 117
9. 'वही' पृ. 8
10. 'वही' पृ. 15
11. 'वही' पृ.112
12. 'वही' पृ. 11
13. 'वही' पृ. 68
14. 'वही' पृ. 117
15. 'वही' पृ. 118
16. 'वही' पृ. 120